वर्तमान समय में लोकविधाओं व लोककलाओं पर गहराता संकट

डॉ. अपर्णा चाचोंदिया
सहायक प्राध्यापक, नृत्य
शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सारांश -

भारत देश हमेशा से लोककलाओं के क्षेत्र में अत्यंत समृद्ध रहा है। इसकी विराट और बहुरंगी संस्कृ दर्शन प्रत्यक्ष रूप से यहाँ की लोककलाओं में होते है। इसलिए लोककलाओं को किसी भी प्रांत का दर्पण कह इसलिए लोककलाओं का उद्देश्य लोकानुरंजन होता है, किन्तु आज मनोरंजन के अनगिनत साधन उपलब्ध हैं एवं युवा पीढ़ी भी पश्चिमी संस्कृति से इतनी अधिक प्रभावित है कि उसे हमारी लोककलायें पिछड़ेपन का अनुभव क है हमारी लोककलायें एवं लोकविद्याएं ग्रामीण अंचलों में ही सीमित होने लगी है। समाज के कुछ जागरूक लोग लोककलाओं एवं लोकविधाओं के उत्थान एवं संरक्षण में लगे हुए है, किन्तु ग्रामीण एवं परंपरागत लोक कला आर्थिक समस्याओं कें कारण इन लोककलाओं के संवर्धन में सहयोग करने में असमर्थ दिखाई देते है। इस शोध का यही उद्देश्य है कि समाज का जागरूक वर्ग सरकार द्वारा प्रदत्त छात्रवृत्तियों आदि की जानकारी इन पारंप लोककलाकारों तक भेजे उन्हें प्रतिष्ठित मंच दिलाने का प्रयास करें तथा लोककलाओं एवं लोकविधाओं अधिकाधिक प्रचार-प्रसार करें। मंचीय आवश्यकताओं के अनुसार लोककलाओं को आकर्षक बनाने के तरीके ग्रामीण परंपरागत कलाकारों को अवगत कराने की भी आवश्यकता है। इसके साथ ही भविष्य के लिए इन कलाओं एवं लोकविधाओं को लिखित साहित्य के रूप में संरक्षित करने की बहुत आवश्यकता है। जागरूकता के अ में इन लोककलाओं और लोकविधाओं पर संकट गहराता दिखाई देता है।

मुख्य शब्द - लोककला, लोकविधा, लोकनृत्य, लोकवाद्य, लोककथा, लोकगाथा।

लोककलाएं किसी भी प्रांत का दर्पण होती हैं जिसमें उस प्रांत विशेष की संस्कृति के स्पष्ट दर्शन होते यदि हम अपने प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करें तो 'मार्गी' और 'देशी' दो कलारूपों का विवरण प्राप्त होता है। उसे कहते हैं जिसे ब्रह्मा ने खोजा (आविष्कार किया), भरतादि ने शम्भु के समक्ष जिसका प्रयोग किया तथा जो नि रूप से कल्याणप्रद है। जो गीत, वाद्य और नृत्य देश-देश में लोगों की रूचि के अनुसार प्रयुक्त होकर हृदयरंजक है है, वह देशी है।[1] लोककलाओं को देशी के अंतर्गत ही माना जाता है।

'लोक' शब्द का सामान्य अर्थ है 'लोग' या 'जन' एवं साहित्यिक दृष्टि से 'लोक' का अर्थ 'संसार' 'जगत' है। इस तरह लोककलाओं को सहज और प्राकृत कलाएं मान सकते हैं। इन कलाओं को उसी रूप में

ISSN 2395-051X

कर लिया जाता है जैसा हमारे पूर्वजों ने हमें हस्तांतरित किया है इन्हें परिष्कृत नहीं किया जाता, इनका वास्तविक स्वरूप ही इनकी विशेषता है। लोककलाओं का उद्देश्य लोकानुरंजन होता है।

लोककलाओं एवं लोकविधाओं के अंतर्गत लोकनृत्य, लोकगीत, लोकसंगीत (गायन, वादन, नृत्य), लोकनाट्य, भक्ति-संगीत (जो देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना के समय गाए-बजाए जाते हैं), लोकचित्र (प्रत्येक संस्कारों, तीज-त्योहारों में बनाए जाते हैं), लोककथाएं, लोकगाथाएं इत्यादि सम्मिलित हैं।

लोककलायें एवं लोकविधाएं जनसामान्य से प्रत्यक्ष सरोकार रखती हैं। दिनभर के परिश्रम के बाद दुख-दर्द को भूल जाने में ये लोककलाएं सार्थक सिद्ध होती हैं और ये हमारे जीवन को ऊर्जा प्रदान करती हैं। प्रदर्शनकारी लोककलाओं में इतना आकर्षण होता है कि लोकवृत इन्हीं के चारों ओर घूमता रहता है। ये कलाएं लोकमानस को अपनी ओर खींचे रहती है और जनजीवन में आनंद का प्रसार करती है। गांवों के चौपालों पर गौधूली वेला के बाद अपने स्वयं के मनोरंजन के लिए ग्रामवासी अपनी कलाओं का प्रदर्शन करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में लोककलाओं के प्रदर्शन के लिए विशेष मंच व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होती, अपितु गांव के प्रांगण या चौपाल में ही ये लोककलाएं स्वच्छंद रूप से प्रदर्शित की जाती हैं। दर्शक और कलाकारों में बहुत आत्मीयता रहती है, उनके बीच कोई सीमारेखा नहीं होती। इसलिए प्रत्येक आंचलिक क्षेत्र का व्यक्ति इनमें भाग लेने व देखने में अपना योगदान देता है। साधारण शब्दों में कहा जाए तो ऐसी कलाएं जो कठोर नियमों के बन्धनों से मुक्त हों, जिनका उद्देश्य लोकानुरंजन हो, जिनका आयोजन करने के लिए विशेष व्यवस्थाओं की आवश्यकता न हो अपितु सरल भाव से किसी भी खुशी के अवसर पर, त्योहारों पर या मांगलिक अवसरों पर प्रस्तुत की जाती हैं, लोककलाएं कहलाती हैं। ये लोककलाएं देश के विभिन्न अंचलों का प्रतिनिधित्व करती हैं, उदाहरण स्वरूप यदि हम कोई लोकगीत सुन रहे हैं तो उसकी बोली, धुन, बजौटी (वाद्य वादन शैली) आदि से अपने आप जान जायेंगे कि ये लोकगीत किस अंचल का है। हमारी लोककलाओं में भारत की बहुरंगी संस्कृति के स्पष्ट दर्शन होते हैं। ये लोककलाएं ही हमारी संस्कृति एवं परम्परा की पहचान है ऐसा कहा जाए तो शायद ये गलत नहीं होगा।

जब इन लोककलाओं की भूमिका इतनी अधिक महत्वपूर्ण है तो स्वाभाविक है कि इनके संरक्षण एवं संवर्धन हेतु जागरूक रहना सभी का उत्तरदायित्व बनता है। निश्चित रूप से समय-समय पर सरकार ने इन लोककलाओं के संरक्षण के लिए बहुत महत्वपूर्ण प्रयास किए हैं जो काफी हद तक सफल भी रहे। जैसे लोककलाओं के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की छात्रवृत्तियां दी जा रही हैं जो कि हर आयुवर्ग के लिए निर्धारित हैं। लोककलाकारों की सहायतार्थ एवं उनकी कलाओं को मंच प्रदान करने के उद्देश्य से लोकोत्सव, युवा उत्सव आदि का आयोजन किया जाता है। संस्थागत शिक्षण प्रणाली में भी लोककलाओं को एक विषय के रूप में स्थान प्राप्त है, किन्तु बहुत ही सीमित संस्थाओं में लोककलाओं को पाठ्यक्रम में रखा गया है जिसके कारण लोककलाओं का सैद्धांतिक पक्ष अधिक प्रबल नहीं है। चिंतनीय विषय यही है कि क्या सरकार द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं से लोक कलाकार लाभान्वित हो पा रहे हैं? नहीं, इसका प्रमुख कारण है जानकारी का अभाव। हमारे देश की लोकलाएं ग्रामीण अंचलों में बसती हैं, किसानों के

आस-पास घूमती है। लोककलाकार ग्रामवासी जब बोलता है तो आंचलिक बोली, गाता है तो लोकगीत, अभिनय है तो लोकनाट्य, नाचता है तो लोकनृत्य, कुछ बनाता है तो लोकचित्र।

ये लोककलाकार इतने जागरूक नहीं होते है कि वह अपने कला-कौशल का मूल्य पहचाने और द्वारा दी गयी सुविधाओं का लाभ उठाकर अपनी कलाओं को संवर्धित कर उन्हें संरक्षित कर पायें। यही उनके का भी कारण है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों को पिछड़ा कहा जाता है, भले ही वे लोक कलाओं में कितने भी क्यों न हों। आज के शिक्षित समाज में भी काफी बुद्धिजीवी लोक कलाओं के प्रति जागरूक होते जा रहे हैं। ये में जाकर पारंपरिक कलाकारों से उनकी कला का प्रशिक्षण लेते हैं और फिर इन कलाओं को सजा-संवारकार प्रस्तुत करते हैं। कलाकारों को गठित कर एक दल बनाते हैं जो देश-विदेश तक इन कलाओं का प्रचार-प्रसार हैं, लेकिन दुविधा ये है कि जो वास्तविक लोक कलाकार थे वह तो गांव में ही छूट जाते हैं। उचित मार्गदर्शन जागरूकता एवं साक्षरता का अभाव इन कलाकारों की दुर्दशा का मूल कारण है जो इन्हें सरकार द्वारा दी सुविधाओं से वंचित रखता है। इन लोक कलाकारों की आर्थिक परेशानी के और भी कई कारण हैं जैसे ये क पारम्परिक होती हैं, कलाकार इनका प्रशिक्षण शुल्क नहीं लेते हैं, वे इसे निशुल्क ही सिखा देते हैं। प्रस्तुति के पारिश्रमिक लेने की परम्परा लोककलाओं में प्रचलित नहीं है जब तक कि ये कलाएं व्यवसायिक रूप न लें।

शास्त्रीय कलाओं की भांति इन लोककलाओं के कोई शास्त्र भी नहीं रचे गये हैं जहां पर ये कलाएं की भांति सदैव के लिए संरक्षित हो जातीं। लोककलाओं एवं लोकविधाओं के सैद्धान्तिक पक्ष में कमी के कारण सी लोककलाएं विलुप्त हो चुकी हैं। आज भी इनका पर्याप्त साहित्य अनुपलब्ध है क्योंकि ये कलाएं वाचिक पर द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती चलीं आई हैं। शहरी क्षेत्रों में रहने वाले लोककलाकार जो कि शिक्षित भी हैं जागरूक भी हैं हमारी लोककलाओं एवं लोकविधाओं को संरक्षित करने का प्रयास कर रहे हैं एवं सरकार द्वारा दी सुविधाओं का लाभ लेने का भी प्रयास करते हैं और बहुत से कलाकारों को सरकारी सहायता प्राप्त भी हो रही है

इन लोक कलाओं का लिखित साहित्य होना भी उतना ही अनिवार्य है जितना कि प्रायोगिक पक्ष। ये कल केवल मनोरंजन का साधन मात्र नहीं हैं बल्कि किसी देश की सांस्कृतिक पहचान एवं अमूल्य धरोहर होती हैं। इसलि आज प्रत्येक लोक कलाकार जो कि जागरूकता के साथ इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं उनकी ये जिम्मेदारी भी है इन कलाओं का सैद्धान्तिक पक्ष भी प्रबल बनायें। लिखित साहित्य होने पर लोक कलाओं एवं लोक विधाओं विधिवत शिक्षा दी जा सकेगी, जिससे इनके बारीक से बारीक पहलू का भी गहन अध्ययन कर शोध की संभावना के द्वार भी खुलेंगे। इसके साथ ही जागरूक लोक कलाकारों एवं समाज के जिम्मेदार बुद्धिजीवियों से भी ये अपे की जा सकती है कि वे अन्य लोक कलाकारों का भी ध्यान रखें जो कि शिक्षा के अभाव में कई उपयोगी जानकारि से वंचित रह जाते हैं। उनको समय-समय पर उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता है। जिस तरह सरकार का हर अंच के प्रत्येक लोक कलाकार तक सहायता एवं सुविधाओं की जानकारी पहुंचाना संभव नहीं है उसी प्रकार इन लो कलाकारों का भी राष्ट्रीय स्तर पर आकर इन लोक कलाओं और लोक विधाओं को सबके समक्ष प्रचारित करने त

की यात्रा सुगम नहीं है। इसलिए प्रत्येक नागरिक को अपनी लोक संस्कृति के विषय में गंभीरता से विचार कर इसको समृद्ध और संरक्षित करने के प्रयास करने होंगे।

सरकार और अशिक्षित लोक कलाकारों के मध्य सेतु का कार्य करना जागरूक समाज का दायित्व है। इस विषय से सम्बन्धित मैं अपना स्वयं का अनुभव साझा कर रही हूँ लगभग 10-12 वर्ष पहले सागर (म.प्र.) में युवा उत्सव में बुन्देलखंड के किसी दूरस्थ ग्रामीण अंचल से लोक कलाकारों के "सैरा नृत्य दल ने लोकनृत्य प्रतिस्पर्धा में सहभागिता की। "सैरा नृत्य" बुन्देलखंड का पुरूष प्रधान पारम्परिक लोकनृत्य है जो सावन में कजलियों के त्यौहार पर प्रदर्शित किया जाता है। युवा उत्सव में इस नृत्य की प्रस्तुति बहुत ही रोमांचक थी जिसमें अत्यधिक स्फूर्ति और कठिन नृत्यमुद्राओं का समन्वय था। नृत्य संरचना एवं प्रयुक्त लोकसंगीत व वाद्यों का प्रयोग पूर्णतः पारम्परिक था। बहुत ही मनमोहक प्रस्तुति के बाद भी इस नृत्यदल को उसकी प्रतिभा के योग्य पुरस्कार प्राप्त न हो सका। इसका कारण उनके साथ प्रतियोगिता में पक्षपात बिल्कुल नहीं था बल्कि नृत्यदल को प्रतिस्पर्धा के नियमों की उचित जानकारी न होना था, जैसे - कलाकारों की संख्या, वाद्य-वादकों की संख्या तथा अंक विभाजन के बिन्दु जैसे वेशभूषा इत्यादि, मंच पर प्रस्तुति के लिए एवं संगतकारों के लिए निश्चित एवं पूर्वनिर्धारित स्थान का ज्ञान इत्यादि। इन हतोत्साहित कलाकारों ने प्रतियोगिता में आना छोड़ दिया। उन्हें शायद ऐसा अनुभव हुआ होगा कि शहर में गांव के कलाकारों के साथ पक्षपात हो गया या फिर उन्होंने स्वयं अपने आपको कम आंक लिया। यदि इन ग्रामीण लोक कलाकारों का समय से प्रतिस्पर्धा के सारे नियमों की विधिवत जानकारी दी जाती तो संभवतः ये लोक कलाकार राष्ट्रीय स्तर तक अपने लोकनृत्य द्वारा अपने अंचल का प्रतिनिधित्व करते। ये लोक कलाओं के क्षेत्र में बहुत बड़ी क्षति थी। एक नया पारंपरिक नृत्य अपना परिचय देने से पहले ही वापस लौट गया। इसी तरह के लोकनृत्यों और लोक कलाकारों को आवश्यकता है कि उन्हें उचित मार्गदर्शन प्राप्त हो उनमें आत्मविश्वास जगाया जाए। जिन लोक कलाओं पर काम किया जा चुका है और उन्हें प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हो चुका है वर्तमान में लोक कलाकार उन्हीं कलाओं को बार-बार प्रदर्शित कर रहे हैं। इस तरह इन कलाओं का दायरा सीमित सा हो गया है जबकि लोक कलाएं असीमित हैं, आवश्यकता है उन पर काम करने की और उन्हे मंच तक लाने की।

लोक कलाओं के विषय में हमेशा से ऐसा कहा जाता रहा है कि इन कलाओं के प्रदर्शन के लिए विशेष मंच की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु ये विचारधारा केवल ग्रामीण अंचल में सामान्य प्रस्तुति तक ही सीमित है। जब इसके आगे के स्तर पर ये लोक कलाकार पहुँचते हैं तो उन्हें आवश्यकता होती है आधुनिक मंच व्यवस्था के सम्पूर्ण ज्ञान की। मंच सज्जा, वेशभूषा, रूप-सज्जा, प्रकाश व्यवस्था एवं ध्वनि व्यवस्था आदि आधुनिक मंच की आधारभूत आवश्यकताएं हैं जिनका समुचित ज्ञान होना प्रत्येक लोक कलाकार के लिए आवश्यक होता है। अतः लोक कलाकारों के दल में कुछ ऐसे कलाकार अवश्य होने चाहिए जो तकनीकि ज्ञान रखते हों एवं मंच पर सफल प्रस्तुति के नियम व आवश्यकताओं का समुचित ज्ञान रखते हों। प्रतिस्पर्द्धा के इस युग में किसी भी जानकारी की कमी हमें बहुत पीछे कर देती है।

आज का जागरूक समाज पारंपरिक लोक कलाकारों को सम्मान की दृष्टि से देखता है, समाज में उनकी एक प्रतिष्ठित पहचान है। फिर भी तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो वर्तमान में लोक कलाकारों की गम्भीर रही है। इस क्षेत्र में जीविका के साधन बहुत ही सीमित हैं व लोककलाओं द्वारा धनार्जन भी इतना पाता कि ये कलाकार आर्थिक संकटों का सामना कर पायें। यदि प्रत्येक गांव व अंचल को सरकार की अन्य की भाँति इन लोककलाओं के विकास से सम्बन्धित जानकारी भी अनिवार्य रूप से दी जाए एवं प्रोत्साहन आर्थिक सहायता भी प्राप्त हो सके तो सम्भवतः ये लोककलाएं पुष्पित और पल्लवित होती रहेंगी। अपनी में ही जीविका खोजकर कलाकार परिवार के पालन-पोषण के साथ ही इन कलाओं को भी जीवंत रख सकें

वर्तमान समय में हम कोविड-19 जैसी वैश्विक महामारी से जूझ रहे हैं। इस लॉकडाउन के समय लोक कलाकारों पर संकट के बादल और भी गहरा गए हैं, क्योंकि अधिकांश कलाकारों की जीविका मंचीय प्र पर ही निर्भर है। अधिकांश प्रस्तुतियां सामूहिक होती हैं। इस समय लोगों का एक स्थान पर समूह में खड़े होना निषिद्ध है फिर प्रस्तुति देना तो असम्भव ही है। ये लॉकडाउन का अनुभव हमारे लिए बिल्कुल नया हैं यदि इ अनुभव लेकर आज हमने आगे की योजनाएं बना लीं तो सम्भवतः भविष्य में कभी ऐसी विषम परिस्थितियों का सा न करना पड़े। सरकार को भी लोककलाओं के क्षेत्र में नौकरियाँ एवं पर्याप्त रोजगार की व्यवस्था करना चाहिए। इ ही पर्याप्त नहीं है आज का युवा वर्ग चाहे ग्रामीण हो या शहरी यदि स्मार्ट फोन चला सकता है तो अन्य तकनी जानकारियाँ भी प्राप्त कर सकता है। ऑनलाइन प्रस्तुतियां, वेबीनार, यू-ट्यूब पर अपनी कलाओं की प्रस्तुति प्रशिक्षण के वीडियो साझा करना, लोकविधाओं (लोककथाएं, लोकविश्वास आदि) को रोचक तरीके से प्रस्तुत क एवं उनको लिखित साहित्य में संरक्षित करना, लोकवाद्यों का वादन, रखरखाव, प्रशिक्षण आदि, लोकचित्रों का प्रद एवं प्रशिक्षण आदि। ये सब ऑनलान सम्भव हैं। बस आवश्यकता है जागरूक होने की और जागरूक लोगों के द्व अन्य लोगों को उचित मार्गदर्शन देने की।

संदर्भ -

1. ज्योतिषी, डॉ. चेतना ''कथक कल्पद्रुम'', अभिनव प्रकाशन, सिविल लाइंस मंडला,2002
2. लोककलागुरू स्व. श्री विष्णु पाठक, पूर्व विभागाध्यक्ष एवं संस्थापक प्रदर्शनकारी कला विभाग, डॉ. हरीसिं गौर विश्वविद्यालय सागर के वाचिक उद्बोधनों एवं साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी।